उसको इस भूमि का सम्मान करना होगा। भारत की जय, पराजय के प्रति उसके अन्दर वेदना जागनी चाहिए। शत्रु कौन है, मित्र कौन है, इसे पहचानने वाला ही राष्ट्रीय (घटक) होता है। यहां का राष्ट्रीय (घटक) और नागरिक पर्यायवाची नहीं हो सकते। इस पहचान को बनाए रखना, इसके प्रति समर्पित रहना ही राष्ट्रधर्म है। इसके लिए व्यक्तिगत जीवन से ऊपर उठकर राष्ट्र-जीवन से एकात्म होना पड़ता है।

अपने देश में अगर कुछ अव्यवस्थाएं हैं तो उनके प्रति आक्रोश हो सकता है। अगर कुछ बातों से असुविधा है तो उनके विरुद्ध आंदोलित हुआ जा सकता है। लेकिन यह कैसे कहा जा सकता है कि हमारा देश से संबंध समाप्त हो गया। पिछले दिनों में ऐसी कई घटनाएं हुई। उनके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि सब जानते हैं कि इस भूमि को गुलिस्तां मानने वाले लोगों ने इसे छोड़ने की बात भी कही। बाह्य पहचान किसी के अंत:करण से होती है। बाहर तभी अच्छा दिखेगा जब वह अंदर से अच्छा है। कुछ समय के लिए वह सच्चाई छुपा सकता है। लेकिन दीर्घकाल के लिए नहीं।

ऐसा कहा जाता है कि अगर सच बोलने वालों की स्मरणशक्ति कमजोर है तो चलेगा। लेकिन असत्य बोलने वालों की स्मरणशक्ति अच्छी रहनी चाहिए। नहीं तो कब क्या कहा, यह भूल जाते हैं। अगर हम ऐसी प्रमाणिकता के साथ काम करते हैं तो किसी भी परिस्थिति में श्रेष्ठ भाव से काम करते हैं। इसी भाव को राष्ट्रधर्म कहते हैं। इस प्रकार के राष्ट्रधर्म का स्मरण करने वाला और पालन करने वाला समाज ही देश की गरिमा को विश्व मंच पर स्थापित कर सकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने कभी कहा था कि मैं देख रहा हूं कि भारत माता विश्व के सर्वोच्च सिंहासन पर बैठकर दुनिया को रोशन कर रही है। यहां वह राज्य की सीमाओं का विस्तार करने की बात नहीं कर रहे थे। वह कह रहे थे कि मैं दुनिया को एक श्रेष्ठ मार्गदर्शन देने वाला समाज देख रहा हूं। यही राष्ट्रधर्म है। यह राष्ट्रधर्म अगर कहीं कमजोर होता है या राजा का तेज कम हो जाता है, या फिर उसमें आत्महीनता का भाव जाग जाता है तो वह संवेदनहीन बन जाता है। परंतु यही पर्याप्त नहीं है। प्रजा को दो समय का भोजन चाहिए। सब प्रकार की सुरक्षा की गारंटी चाहिए। आवागमन के उचित